International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

NEP 2020 संस्कृत स्नातक एकीकृत पाठ्यक्रम में सम्मिलित उत्तरसीताचरितम् महाकाव्य : विद्याधिगम: सर्ग का वैशिष्ट्य

डॉ. अराधिका

सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, बाबा बरुआ दास पी. जी. कालेज, परुइया आश्रम, अंबेडकर नगर

शोध सार–

सनातन कवि रेवा प्रसाद द्विवेदी विरचित उत्तरसीताचरितम् महाकाव्य के विद्याधिगम सर्ग में सीता के पुत्रों लव और कुश को गुरु वाल्मीकि के आश्रम में शिक्षा के लिए भेजने की कथा वर्णित है। इस सर्ग में मातृत्व और गुरुत्व का सुंदर चित्रण किया गया है।लव और कुश को वेद, शास्त्र और संगीत की शिक्षा दी जाती है, जिससे वे विद्याध्ययन में निपुण हो जाते हैं। गुरु वाल्मीकि के निर्देशन में उनकी शिक्षा-दीक्षा होती है, जिससे वे अपने पिता राम के योग्य पुत्र सिद्ध होते हैं।इस सर्ग के माध्यम से कवि ने शिक्षक व शिक्षार्थी के गुणों तथा शिक्षालय का स्वरूप के साथ ही शिक्षा के महत्त्व और माता-पिता एवं गुरु के प्रति श्रद्धा की भावना को उजागर किया है।

शब्द कुञ्जी- महाकाव्य, महिषी, राष्ट्रहित, अभूतपूर्व, प्रपञ्च, सूक्ष्मदर्शी, सर्वकल्याणार्थ, विपक्षगामी, परिशीलन, आत्मचेतना, उत्तरदायित्व, समुत्कर्ष, अधिगमोन्मुख,समारोपित, संस्कृति आदि।

आधुनिक संस्कृत महाकाव्यों की श्रृंखला में आधुनिक कालिदास की उपाधि से विभूषित महाकवि रेवा प्रसाद द्विवेदी प्रणीत उत्तरसीताचरितम् महाकाव्य अन्यतम एवं अप्रतिम है। राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत इस महाकाव्य में कुल दस सर्ग एवं 694 श्लोक हैं, जिसमें राजा राम के राज्याभिषेक से महिषी सीता की समाधि पर्यन्त कथा वर्णित है। इस महाकाव्य में सीता करूणा की मूर्ति नहीं अपितु रघुवंश की कीर्ति पताका, राष्ट्रहित सर्वस्व त्याग करने वाली महायोगिनी नायिका के रूप में विद्यमान हैं।इसी महाकाव्य का सप्तम् सर्ग है - "विद्याधिगम:",जिसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत स्नातक स्तर के संस्कृत पाठ्यक्रम के अन्तर्गत मुख्य पाठ्यक्रम के रूप में रखा गया है। इसकी राष्ट्रीय मान्यता ही इसकी महत्ता

का परिचायक है। अस्तु इस विद्याधिगम: सर्ग के वैशिष्ट्य पर विचार स्वाभाविक है,किंतु उसके पूर्व विद्या के स्वरूप पर चर्चा करना विचारणीय है। विद्या के स्वरूप के विषय में कथित है कि -

"अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम्,

सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव स:"।।[1]

अर्थात् "संशयों को दूर करने वाला, परोक्ष वस्तु को दिखाने वाला और सबका नेत्र स्वरूप शास्त्र वह विद्या है, जिसने इसको ग्रहण नहीं किया वहां नेत्र होने के बावजूद भी अंधा है"।

विद्या में एक अभूतपूर्व दिव्य शक्ति है, जिसका प्रमाण है- भारतीय पुराणों एवं उपनिषदों में विद्या को परा एवं अपरा विद्या से भिन्न मुक्ति का साधन मानना -

"सा विद्या या विमुक्तये"।।[2]

यह विद्या भारतीय संस्कृति की मूलाधार है। भारतीय संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन की वाहक हैं। विद्या ही मनुष्य को अन्य प्राणियों से भिन्न बनाती है ,मनुष्य में मनुष्यता का संचार करती है, मानव व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करती है। अच्छी और समृद्ध शिक्षा समाज की स्थिति में बदलाव करने में सक्षम है। राष्ट्र की समुन्नति में सहायक है। इस प्रकार विद्या के अनगिनत स्वरूप हैं,तभी तो नीतिशतककार ने कहा है कि विद्या कल्पलता के समान क्या-क्या नहीं प्रदान करती है -

"मातेव रक्षति पितेव हिते नियुंक्ते,

कान्तेव चापि रमयत्यपनीय खेदम्।

लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिम्,

किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या"।।[3]

अर्थात् "विद्या (ज्ञान) माता के समान रक्षा करती है, पिता के समान हितकारी कार्यों में लगाती है, पत्नी के समान थकावट दूर करके आनंदित करती है, धन (लक्ष्मी) प्रदान करती है और सभी दिशाओं में यश फैलाती है। सत्य है कि कल्पवृक्ष के समान विद्या क्या-क्या सिद्ध नहीं करती, अर्थात् सब कुछ सिद्ध करती है।हमें ज्ञान प्राप्त करने के लिए समय के हर पल का सदुपयोग करना चाहिए और धन इकट्ठा करने के लिए छोटी-छोटी बचत करनी चाहिए। समय और छोटी बचत की उपेक्षा करने से हम कभी भी ज्ञानवान् या धनी नहीं बन सकते। अतः विद्यार्जन में अपना हर एक क्षण समर्पित करना चाहिए–

"क्षणश: कणशश्चैव विद्यामर्थं च साधयेत्।

क्षणे नष्टे कुतो विद्या,कणे नष्टे कुतो धनम्"।।[4]

विद्या के उपर्युक्त गुणों का दिग्दर्शन सनातन कवि रेवा प्रसाद द्विवेदी कृत उत्तरसीताचरितम् महाकाव्य में हुआ है। आधुनिक संस्कृत काव्यकार द्विवेदी जी ने कथावस्तु एवं विषय वस्तु के दृष्टिगत सप्तम् सर्ग का नामकरण **"विद्याधिगम:"** किया है,जिसमें शिक्षा नीति के माहात्म्य का विशद विवेचन है।

भगवती सीता सप्तम् सर्ग के प्रारंभ में ही विद्या के अप्रतिम स्वरूप का दिग्दर्शन करती हैं। वे कहती है कि–

"नियतमिह चराचरे प्रपञ्चे,नयनगतश्च परोक्षतां श्रितश्च ।

न खलु जगति कश्चनापि भावो,भवति कवेर्विसिनोति यं न दृष्टि:"।।[5]

अर्थात् "इस चराचरात्मक प्रपञ्च संसार में कोई भी प्रत्यक्ष या परोक्ष पदार्थ ऐसा नहीं है, जिसका प्रत्यक्ष कविदृष्टि न करें"। वास्तविक विद्यार्जन का ही प्रभाव है कि व्यक्ति में सूक्ष्मदर्शी, गहन विश्लेषणात्मक शक्ति उत्पन्न हो जाती है फिर कुछ भी उसे छूटता नहीं जो उसकी दृष्टि से परे हो उत्तरसीताचरितम् करने विश्वविद्यालय की स्वरूप को सुंदर ढंग से अभिव्यांजित किया है -

"शिशुहृदि शयिता च येन विद्याज्वलनशिखा स्पृशतीव वैश्वरूप्यम्।

शिवतममिदमस्ति कारणं सत्कुलपति-पावनशारदाऽनुभाव:"।।[6]

अर्थात् शिशुओं के हृदय में प्रसुप्त जो विद्या रूपी अग्नि शिखा है, जब वह विश्वरूप को प्राप्त करती है तो इसमें अत्यंत कल्याणकारी कारण है- अच्छे कुलपति की पवित्र विद्या का प्रभाव। एक सुशिक्षित एवं विद्या संपन्न कुलपति समस्त जिज्ञासाओं को जानकर उसके अनुरूप व्यवहार कर अपने विद्यार्थियों के समुत्कर्ष हेतु प्रयासरत रहता है।

सीता कहती हैं कि हे गुरु वाल्मीकि! मैं अपने पुत्रों के, स्वयं के एवं स्वयं की जनता के परिष्कार के लिए आपके चरणों में समर्पित करती हूं[7],क्योंकि बिना विद्यार्जन के यह संभव नहीं है कि हृदय का परिष्कार किया जा सके। 'माता ही बालक की प्रथम गुरु है' इसको प्रामाणिक मानते हुए गुरु वाल्मीकि कहते हैं कि जो रविकुल की राजरानी हो तथा भारतवर्ष के मुनियों के रक्त से निर्मित जिसकी तुम जैसी माता हो,उसकी शिक्षा के लिए दूसरे किस गुरु की अपेक्षा हो सकती है[8] अर्थात् शिक्षा का बीज शिशु के हृदय में माता द्वारा ही समारोपित होता है और बालक सर्वप्रथम माता के द्वारा ही सीखना प्रारंभ करता है।

माता द्वारा सीखने की क्रिया में दक्ष एवं अभ्यस्त व कुशाग्र युक्त बालक, जिससे शिक्षा प्राप्त करने आयें तो वह गुरु भी बड़ा ही पुण्यात्मा होगा क्योंकि अध्ययन - अध्यापन कार्य तब और भी सुकर हो जाता है, जब अधिगमोन्मुख एवं गुर्वाज्ञा दक्ष शिष्य हो। वाल्मीकि कहते हैं कि विद्यार्जन अथवा सीखने की प्रक्रिया स्वाभाविक है, सभी प्राणियों में हृदयस्थ है। जिस प्रकार ज्वलित अग्नि में अर्चि विद्यमान रहती है, उसी प्रकार प्रकृति और पुरुष स्वरूप यज्ञ संविधान अथवा संपूर्ण विश्व मानव शरीर में विद्यमान रहता है --

भगवति! भुवनान्तरालमेतन्निखिलमपि ज्वलितेऽनले यथार्चि:।

प्रकृतिपुरुषयज्ञसंविधानात् स्वयमुपतिष्ठति मानुषे निकाये।।[9] उत्तरसीताचरितकार रेवा प्रसाद जी कहते हैं कि बालक तो जन्म काल से ही कल्पनाओं की कल्पवृक्षों में लगे फल ग्रहण करता है और उसमें असीम चिंतन शक्ति होती है। शनै:-शनै: वह उत्कर्ष प्राप्त करना चाहता है और उत्कृष्ट गुरु के संसर्ग से वह

मन, शरीर और आयुष्य में दिव्यता एवं परात्परता को प्राप्त कर लेता है। अतएव उत्तम गुरु का सानिध्य प्राप्त होना भी परमात्म कृपा है।

एक उत्तम शिष्य के गुणों का वर्णन करते हुए वाल्मीकि कहते हैं कि निरंतर अभ्युदय की स्पृहा रखने वाले, विषम परिस्थिति में भी दृढ़ संकल्पित रहने वाला शिष्य निरंतर अपने कृत्य से परमार्थ में संलग्न रहता है।धैर्य एवं दृढ़व्रती होना विद्यार्थी का प्रमुख गुण है। उसे आत्मतत्त्व का अनुसंधान कर्त्ता अथवा चिंतनशील बुद्धि से युक्त होना चाहिए। शास्त्रों में कहा भी गया है कि–

"यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा, शास्त्रम् तस्य करोति किं।

लोचनाभ्याम् विहीनस्य, दर्पण: किम् करिष्यसि"।।[10]

अर्थात् जिस मनुष्य में स्वविवेक, चेतना एवं बोध क्षमता नहीं है, उसके लिए शास्त्र क्या कर सकता है जैसे नेत्र विहीन व्यक्ति के लिए दर्पण भला क्या कर सकता है। स्वविवेक, चिंतनशील एवं बोधगम्य होने तथा सद्गुरु का सानिध्य प्राप्त होने पर शिष्य में विशुद्ध बुद्धि जागृत होती है, 'यह यह है' और 'यह यह नहीं है' इस प्रकार की विश्लेषणात्मक क्षमता उत्पन्न हो जाती है -

इदमिदममिदमस्ति नेदमित्थं स्वयमुपबुद्धविशुद्धबुद्धिरेष:।

अरुचिररूचिरे समानभावास्वनलशिखास्वनुवीक्षते विवेकम्।।[11]

वाल्मिकि कहते हैं कि कुलपति अथवा आचार्य शिष्य में केवल अपनी संस्कृति की छाप छोड़ते हैं, वह लता के समान जन्म के फलों को फलने हेतु वृद्धि करती रहती हैं। इसलिए विद्या का अधिगम ऐसा हो, जो सर्वहिताय तथा सर्वकल्याणार्थ हो, जिससे मानव की गति प्रतिहत न हो और वह विद्या रूपी अमृत रसपान से सभी को संतुष्ट कर सके।

विद्याधिगम हेतु सर्वप्रमुख गुण है - रुचि(INTREST) बिना रुचि के कार्य निष्फल हो जाता है, इसलिए द्विवेदी जी कहते हैं कि--

युगलमिदमत: परीक्ष्य शिक्षारुचिमनुरूपमहं प्रशिक्षयिष्ये।

व्रजति विफलतां सतां प्रयासो रुचिपयसां शिखिवर्त्मकर्षणेन।।[12]

अर्थात् "शिक्षा के प्रति रुचि कैसी है, यह बिना जाने शिक्षा प्रदान करना व्यर्थ है क्योंकि अच्छे शिक्षकों का भी प्रयास विफल हो जाता है, यदि रुचि रूपी जल को अग्नि के रास्ते खींचा जाए"। हिंदी में एक प्रसिद्ध उक्ति है कि बिना प्यास के घोड़े को सरोवर तक तो ले जाया जा सकता है परंतु जबरन पानी नहीं पिलाया जा सकता, अतः रुचि सबसे महत्त्वपूर्ण है।

रुचि के उपरांत दया, त्याग, क्षमा, राष्ट्रसमर्पण आदि भावों का स्थान है,जिसके सम्पुट हृदय में विद्यमान है या नहीं,यह जान लेना चाहिए।ललित कलाएं, गणित, विज्ञान व साहित्य तथा भूगोल आदि शास्त्रों के

प्रति कैसा भाव है,यह भी पता लेना चाहिए, क्योंकि एक उत्तम विद्यार्थी को समस्त विषयों का सामान्य ज्ञान व समझ अवश्य होनी चाहिए।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली **राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020** विद्यार्थी में ऐसे ही गुणों का समावेश करने के लिए प्रतिबद्ध है, जिसके लिए स्नातक पाठ्यक्रम में ही मेजर, माइनर, पाठ्यसहगामी है तथा व्यावसायिक शिक्षा को समाहित किया गया है तथा संकाय की बाध्यता को समाप्त कर दिया गया है, जिससे विद्यार्थी रुचि के अनुरूप विषय लेकर उसमें उत्कृष्ट कार्य करने के लिए प्रेरित हो। परंतु द्विवेदी जी वाल्मीकि के माध्यम से समाज को यह भी बताना चाहते हैं कि उत्तम अध्ययन - अध्यापन कार्य भी श्रेष्ठ नहीं है, जब तक उससे प्रजा की प्रतिष्ठा के परम लाभ में सिद्ध न प्राप्त हो ---

"सुपठितमपि भूयसा वृथैव द्विजललने! भवतीह पण्डितानाम्।
यदि भवति न तत् प्रजाप्रतिष्ठापरमफलाय निवासिनां समाते"।।[13]

कवि कहते हैं कि केवल विद्वान होना ही श्रेष्ठतर नहीं है, सक्रिय रहना भी परम आवश्यक है और जब विद्वत्जन ही निष्क्रियता का बीजारोपण कर दें तो सक्रियता का नवीन बीज समारोपित कैसे होगा। वाल्मीकि कहते हैं कि वह मानव बड़ा ही स्वार्थी है, जो शास्त्रों का परिशीलन कर विरक्त हो जाता है और विपक्षगामी जनों को रोकने का स्वल्प भी प्रयत्न नहीं करता है। आधुनिक समाज के बुद्धिजीवियों को भी यह संदेश है कि वे सर्वज्ञाता होकर भी निष्क्रिय न रहें, जब तक इस धरणी पर श्वांस गतिमान है, पूर्ण सक्रियता के साथ जनहित में निरत रहें, क्योंकि विद्वानों का यह व्रत होता है, व्रत ही नहीं महाव्रत होता है कि वह प्रत्येक व्यक्ति के हृदय को प्रकाशराशि की उज्ज्वलता से पर्याप्त उज्ज्वल करते रहें।[14]

वाल्मीकि जी सीता के अमल होते हुए भी उनके परित्याग को दो प्रमुख कारण मानते हैं, प्रथम-- राजा राम की प्रजा का अशिक्षित होना और द्वितीय-- विद्वानों का वैराग्य अथवा निष्क्रियता–

"भगवति! परमेकमत्र तत्त्वं तव परिदेवनमूलमुन्नयामि।
रघुपतिजनता न शिक्षितास्ति,भवति च तन्त्रमित: सतां विरक्ति:"।।[15]

समाज के लिए अत्यंत ही दुःख की बात है कि शिक्षा के होते हुए भी तत्कालीन समाज में सातियों का संरक्षण नहीं हुआ और एतत्कालीन समाज में भी यही विडम्बना है कि आज यहां भी शिक्षा होने के बावजूद भी स्त्रियां संरक्षित नहीं है, तो ऐसी शिक्षा का क्या औचित्य, जो व्यक्तियों का पोषण न कर पाए, अनाचार का विरोध न कर सके, उचित - अनुचित में भेद न कर सके।

शिक्षा में वह शक्ति है, जो कल्प लता के तुल्य हमें सब कुछ प्रदान कर सकती है। शिक्षा की ही शक्ति पर बाबा भीमराव अंबेडकर 395 अनुच्छेदों वाला भारतीय संविधान लिपिबद्ध कर गए, जो आज सर्वजनों के हित का रक्षक है, मार्गदर्शन है। अतः विद्यार्थी अथवा शिक्षार्थी को इस प्रकार से विद्या का अधिगम करना चाहिए कि वह अपने विद्या के उज्जवल पथ से संपूर्ण संसार को प्रकाशित कर सके।

उक्त विद्या के विवेचन के साथ ही इस विद्याधिगम: सर्ग में प्रकृति का नैसर्गिक चित्रण तथा उपनयन संस्कार विधि का भी उल्लेख है, जो तत्कालीन समाज में विद्या आरंभ होने का सूचक थी प्रकृति चित्रण में संध्याकालीन छटा का मनोरम दृश्य, पशु पक्षियों के प्रत्यागमन की प्रसन्नता, द्युतिशून्य आकाश में विलुलिततारक की शोभा, सरोवर में कुमुदिनी का विभ्रमपूर्ण लास्य अतीव मनोहर, मनोरम तथा हृदयावर्जक है।[1]6

विद्यारंभ से पूर्व विधि - विधान से उपनयन संस्कार संपूर्ण हुआ तथा गुरु वाल्मीकि ने बालकों को परा-अपरा विद्याएं भली भांति पढ़ा दीं तथा अस्त्र-शस्त्र की विद्या भी प्रदान की। उन बालकों में पूर्वोक्त उल्लिखित समस्त शिष्योचित गुण विद्यमान थे, अतः उन्होंने समस्त विद्याएं सम्यक् रूपेण अवगहन कर लिया। इस प्रकार विद्याधिगम: सर्ग का प्रतिफल प्राप्त हुआ।

उक्त विषय पर शोधपत्र लिखने का उद्देश्य आधुनिक महाकाव्य उत्तरसीताचरितम् के प्रति सहृदयों की रुचि उत्पन्न करना तथा विद्याधिगम: सर्ग के माध्यम से समाज को यह संदेश देना है कि एक शिष्योचित एवं शिक्षकोचित गुण कौन - कौन से होने चाहिए और शिक्षा प्राप्त कर लेने के उपरांत भी हमारा दायित्व समाप्त नहीं होता बल्कि वहीं से हमारे दायित्वों का प्रारंभ होता है। हम सम्यक् रुप से विषयों का सूक्ष्मान्वेषण कर समाज को भी सन्मार्ग पर गतिमान होने को प्रेरित करें। शिक्षा केवल पुस्तकों तक ही सीमित न हो बल्कि पुस्तकों से अनुभव प्राप्त कर बाह्य जगत में सकारात्मक रूप से सहयोगी बने। आत्मचेतना जागृत हो, उचित - अनुचित रूप नीर-क्षीर विवेकत्व का विकास हो, गलत का विरोध और सत्य का साथ देने की शक्ति उत्पन्न हो। समाज के प्रति उत्तरदायित्वों का बोध हो, भ्रातृत्व की भावना का विकास हो तथा राष्ट्रीय भावना से युक्त होकर राष्ट्र प्रगति में सहायक बनें, यही वास्तविक शिक्षा का उद्देश्य है---

"सर्वे भवन्तु सुखिन:,सर्वे सन्तु निरामया:।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु,मा कश्चिद् दु:खभाग भवेत्"।।

संदर्भ सूची --

1. हितोपदेश(मित्र लाभ, श्लोक 10)
2. छान्दोग्योपनिषद्
3. नीतिशतकम्, श्लोक 16
4. महाभारत, आदि पर्व,अध्याय 85, श्लोक 32
5. उत्तरसीताचरितम्,7/2
6. वही 7/4
7. वही 7/5

8. वही 7/8
9. वही 7/1
10. हितोपदेश 3.121
11. उत्तरसीताचरितम् 7/18
12. वही 7/25
13. वही 7/29
14. वही 7/31
15. वही 7/35
16. वही 7/43-53